कहानी

अपना घर

डॉ. श्रीमती कमल चतुर्वेदी

प्राइवेट स्कूल के शिक्षक रामेश्वर शर्मा स्वयं के घर का सपना देखते देखते रिटायर हो गए थे . व्यस्तता के चलते वे दो तीन दिन से न तो पौधों को पानी दे पाए थे और न ही चिड़िया के लिए दाना-पानी ही रख पाये थे . बगीचे की स्थिति से उत्पन्न बेचैनी ने उन्हें पुराने दिनों की स्मृति में पहुँचा दिया था ...... उनका गाँव का बहुत बड़ा घर, खेती बाड़ी बगीचा...... पिताजी का लाड़ प्यार, पेड़ पौधों की निस्सीम हरीतिमा में खेलते, कूदते कब सब कुछ बिखर गया, घर, खेत बिक गए माता-पिता चले गए - एक बहन थी वह भी बीमारी में चल बसी रह गए रामेश्वर जी और होशंगाबाद में बस गए, वे इस किराए के छोटे से मकान में, जिसके सामने जरा सा बगीचा और उसकी सेवा में जी जान से लगे रहते वे स्वयं .

उनके बेटे कुशाग्र की यद्यपि पुणे में नौकरी लग चुकी थी, उसका पैकेज भी अच्छा था पर उसकी शादी में यह किराए का मकान बाधा भी बन रहा था . सब यही कह कर चले जाते कि किराए के घर में हम अपनी लड़की नहीं ब्याह पाएंगें- आप कहीं और रिश्ता देख लीजिये. शर्मा जी को यद्यपि इस किराए के घर से कोई शिकायत नहीं थी . वे और उनकी पत्नी सुधा इस घर से संतुष्ट थे . कड़ाके की सर्दी, भारी बारिश और प्रचंड ग्रीष्म में भी यह घर उन्हें हमेशा राहत ही देता था . मकान-मालिक तो इतने भले थे कि हमेशा यही कहते शर्मा जी, आपका ही घर है, इसे अपना ही घर समझें, हम भी आपके ही हैं .

भले ही शर्मा जी घर नहीं खरीद पाए थे पर उनके बेटे कुशाग्र ने अपनी सहकर्मी कौशिकी के सहयोग से पुणे में एक फ्लैट खरीद लिया था . कौशिकी के पिताजी ने अपनी एकमात्र बेटी को फ्लैट दिलाने में भरपूर आर्थिक सहयोग इस मनोभाव से भी दिया था कि कुशाग्र जैसा सुदर्शन, ब्राह्मण, कुलीन दामाद उन्हें पुणे में ही घर बैठे मिल गया था . कुशाग्र की शादी भी शर्मा जी और सुधा की इच्छा के प्रतिकूल ही हुई थी . दोंनो सजातीय, संस्कार वान, साड़ी पहनने वाली, सुंदर, सुशील कुलवधू का सपना ही देखते रह गए थे .

फिर जब कुणाल हुआ तो सुधा और शर्मा जी बेहद खुश होते हुए पुणे पहुँच गए थे . यद्यपि पुणे में शर्मा जी और सुधा बंधन सा महसूस करते थे परन्तु पुत्र मोह में उन्होंने घर का पूरा काम संभाल लिया था . सुधा को बहू के रंग-ढंग जरा भी पसंद नहीं थे परन्तु फिर भी वह उसकी हर सुविधा का ध्यान रखती थी . दो महीने बहुत धीमी गति से बीते थे यहाँ पर . उस दिन शर्मा जी की तबियत कुछ अनमनी सी थी . सुधा ने उन्हें चाय का कप पकड़ाया तो उनके हाथ से छूट गया- पूरी चाय सफेद फर्श पर फैल गई और मंहगा कप भी चूरचूर हो गया . बेचारी सुधा रगड़ती रही पर फर्श पहले जैसा नहीं हो सका .

दूसरे दिन शर्मा जी कढ़ी-चावल खाकर हाथ धोने जा रहे थे तो उन्हें दीवार का सहारा लेना पड़ा . दीवार पर कढ़ी और चावल के हाथों की पीली सी लाईन बन गई थी . सुधा ने कोशिश की थी दीवार पोंछने की पर हल्की पीली लाइन अलग ही दिख रही थी . बहू की पैनी नजरें सब देख रही थीं . उस दिन सुधा रसोई में दूध गरम कर रही थी कि शर्मा जी ने आवाज़ दी थी . सुधा दौड़ कर आई और शर्मा जी की बात सुन ही रही थी कि पूरा दूध उफन कर रसोई घर में फैल गया था . बहू भी उसी समय पानी लेने रसोई घर में गई थी . वहाँ का दृश्य देख उसका पारा चढ़ गया - कभी चाय, कभी दूध और कभी दीवाल पर पीले रंग....... हद है पूरी फर्श बिगड़ गई दीवालें देखी नहीं जाती .... दूध यहाँ ऐसे बह रहा है ...... कचरा घर हो गया .... हमारा फ्लैट तो ...... इन दोनों ने हर जगह सामान फैला दिया .... कोई नौकरानी क्यों नहीं खोज लेते हो तुम कुशाग्र ...... इन्हें विदा करो अब यहाँ से .... मैं और कहाँ तक .... कुशाग्र भी दूध की इस प्रकार की बर्वादी से चिढ़ उठा था .... बाबू अम्मा ...... आप लोगों का तत्काल में टिकट करा देता हूँ आप लोग लौट जाइये .... बहुत रह लिये यहाँ पर .... घर में बहुत अशांति छा रही है ...... रोज़ रोज़ कुछ न कुछ .....

वापस लौट आए थे दोनों अपने उसी किराए के मकान में. तोमर साहब ने ऊपर से ही आवाज़ दी थी- अरे भाई शर्मा जी, उधर कहाँ जा रहे हैं .... इधर ऊपर ही आ जाओ.......... रामू, शर्मा जी से चाबी लेकर जरा उनका घर तो साफ कर दे .... देख ज़रा पानी बगैरा .... मोटर चला दे ...... उनका सामान ले ले और उन्हें ऊपर भेज दे ....

मकान मालिक तोमर साहब, उनकी पत्नी, उनके पुत्र और पुत्रवधू .... सभी ने बेहद प्रेम, आत्मीयता और सम्मान से उन्हें अपने ही कक्ष में बुला लिया था . बहू चाय और गरम गरम पकौड़े ले आई थी . शर्मा जी ने जैसे ही ट्रे में से चाय का प्याला उठाया वैसे ही अचानक प्याला उनके हाथ से फिसल गया और पूरी चाय उनके बहुत मंहगे सोफे पर गिर गई, प्याला बहुत पतले काँच का नक्काशीदार बेहद मंहगा और सुंदर था, फर्श पर गिरकर उसके तीन टुकड़े हो गए थे .

अरे शर्मा जी, काहे परेसान हो रहे....... बैठिये आराम से, इधर आ जाइये........गिर जाने दीजिये .... कोई बात ना है........ थके हारे आए हैं.........जाओ बहू दूसरी चाय बना लाओ.......फटाफट . भाभी, आप काहे घबरा रही हैं...... आप लोग ना थे तो मन ही ना लगता था ......घर फिर से जग गया है.......और हाँ भाभी साम को भोजन मत ना बनाना.......यहीं बन जाएगा ......

किराए के घर में प्रवेश करते हुए शर्मा जी और सुधा की आँखें नम हो उठी थीं......उन्हें लगा वे अपने-घर लौट जाए हैं .

क्लास by बड़े भाई

इन दो कामों के लिए आपके दो घंटे मिलेंगे?

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, लोगों को किसी विचारों ने तभी बदला है जब हमने उन्हें अपनी आदतों और दिनचर्या में उतारा है . जो विचार हमारी आदत का हिस्सा हो जाते हैं वो हमारी मंज़िल को अपने हिसाब से प्रभावित करते हैं . आपकी दिनचर्या से जो मैंने आपकी सुबह और रात का एक एक घंटा मांगा है उसे यदि आप अपने रोज का हिस्सा बना लें तो यकीन मानिए,यह आपको आपके लक्ष्य तक पहुंचा कर ही दम लेगा . इसमें कोई संशय नही . इन दो कामों से धीरे धीरे हर बुरी आदतों से आप खुद किनारा करने लगेंगे . आप अपने समय की कीमत समझने लगेंगे और फिर जिसने यह कर लिया उसे कुछ हासिल करने से कौन रोक सकता है . छोटे भाई, सुबह और शाम वाले ये दो जादुई काम हैं - किसी अच्छी शख्सियत का साक्षात्कार देखना और कोई किताब पढ़ना . यह बड़ी आसान चीज लगी होगी . पढ़कर आपने शायद आर्टिकल को ही बोरिंग घोषित कर दिया हो लेकिन ये दोनों वाकई जादुई हैं . मैं यह अपने निजी अनुभव से भी कह रहा हूँ .

छोटे भाई , जब आप किसी का साक्षात्कार देख रहे होते हैं तो आप उसके जीवन की उस समय तक की यात्रा के उतार चढाव, कमियाँ, खूबियाँ और उसके निष्कर्ष देख सुन रहे होते हैं जो जाने अनजाने आपको एक अनुभव और सीख मिल रही होती है, जो आपकी लक्ष्य पाने की यात्रा को बेहद आसान कर सकती है और आपको जीवन की चुनौतियों का सामना करने कि तरकीबें दे सकती है . और इसी तरह ही जब आप किताब पढ़ रहे होते हैं तो इससे भी किसी के अनुभव, किसी की कल्पना , किसी के शानदार विचारों से रूबरू हो रहे होते हैं .यह भी आपके जीवन को दिशा देती है . इसलिए छोटे भाई, यदि आप सुबह के एक घंटे को किसी बड़ी शख्सियत का साक्षात्कार देखने में और रात के एक घंटे सोने से पहले कोई अच्छी सी किताब पढने में देंगे तो देखते देखते कुछ ही महीनों में आप बिलकुल अलग व्यक्तित्व हो जाएंगे .

इसे अपनी दिनचर्या में शामिल करिएगा और बताइएगा कि ऐसा हुआ या नही . बस, यही कहना था, धन्यवाद .

व्यंग्य रचना

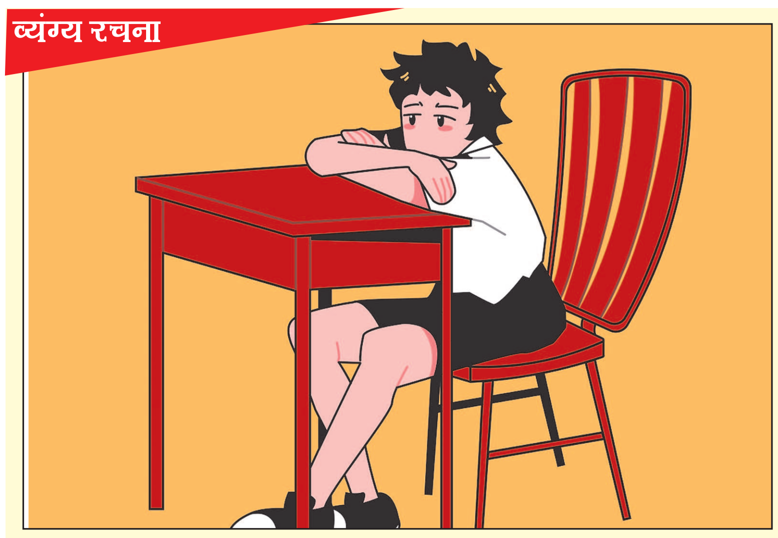

आलस में सुख है

मेघा राठी

लोग कहते हैं आलस मत करो, किताबों में भी यही लिखा है कि आलस में सुख नहीं. पर मुझे लगता है कि आलस करना उतना आसान नहीं है जितना सुनने में लगता है. यह भी एक महत्वपूर्ण कला है. इस संसार का दुर्भाग्य है कि इस कला को कभी समझा ही नहीं गया और जिसने इस कला को समझ कर इसे अपना लिया उसे जीवन का आनंद प्राप्त हो गया. आलस करने पर ही सर्वोत्तम विचारों की भी उतपत्ति होती है क्योंकि विभिन्न प्रकार कर क्रिया - कलापों के दबाव के अभाव में मष्तिष्क पूर्णत: मुक्त होकर ऐसे विषयों पर विचार करता है जिन पर किसी का ध्यान आसानी से नहीं जाता. जरा सोचिये, न्यूटन यदि पेड़ के नीचे आराम से न बैठे होते तो क्या सेब के गिरने पर उनका ध्यान इतनी गहराई से जाता कि वे गुरुत्वाकर्षण की खोज कर पाते !

दरअसल आलस करना मन से जुडा हुआ है. यदि आलस करने में निपुणता प्राप्त करनी है तो सर्वप्रथम अपने मन की लगाम अपने हाथों में न लेकर मन के ही पास छोड़नी होगी. सबसे पहले मन की मित्रता मष्तिष्क से करवानी पड़ेगी. आलस करने में सबसे बड़ी बाधा यही उत्पन्न करता है. बार - बार याद दिलाएगा कि अभी ये काम करना है, अभी वो काम बचा है, मटर का मौसम है छीलकर फ्रिज में स्टोर कर लो या आज मुन्नू के पापा के लिये उनकी पसंद का मूंग कि दाल का हलवा बना लो. भले ही उस हलवे के चक्कर में दर्द से बेहाल कलाइयाँ रो - रो कर बाम की बदबू नाक को सुंघा -सुंघा कर तंग करती रहें.

आलस करने पर व्यर्थ के दबाव से भी व्यक्ति बच जाता है क्योंकि लोगों को पता होता है कि यह कार्य आपको देने का कोई लाभ ही नहीं क्योंकि यह अज्ञात है कि कार्य पूर्ण होगा भी या नहीं अथवा इस प्रकार होगा कि सामने वाले व्यक्ति को यह कहने पर विवश होना ही पड़े कि भाई तू रहने दे, हम खुद कर लेंगे. कार्यालय,घर में आलस के इस विशेष प्रभाव से शारीरिक और मानसिक कष्ट नहीं होते क्योंकि यदि सौंपा गया कोई कार्य सही प्रकार से नहीं हुआ तो डाँट - फटकार से मानसिक पीड़ा होगी और कार्य करने के दौरान शारीरिक कष्ट तो होगा ही.

आलस करने से आप पर्यावरण के मित्र भी बनेंगे,डाँट - फटकार के कारण उत्पन्न होने वाले ध्वनि प्रदूषण को रोककर. आलसी व्यक्ति कहीं भी किसी भी परिस्थिति में समायोजित हो जाता है. ऐसी प्रवत्ति साधु स्वभाव के व्यक्तियों की होती है. न काहू से दोस्ती न काहू से बैर... जैसी मनोदशा आने पर मानव शांतचित्त होकर रहता है. उसे न किसी बात का बुरा लगता है न भला.

यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि वह आलसी है किन्तु अधिक देर तक खाली रहते हुए भी वह उकता जाता है, थक जाता है तो इसका अर्थ है कि अभी वह आलस्य करने की कला में प्रवीण नहीं हुआ है. उसे अभी बहुत परिश्रम करने की आवश्यक्ता है. इसे एक प्रकार का तप समझना चाहिए. प्रयास करते रहने से यह सम्भव है. इसके लिये अधिक संसाधनों की भी आवश्यक्ता नहीं है, आवश्यक्ता है तो केवल इस ज्ञान व मंत्र की - इस संसार में जो होना है, वह होकर ही रहेगा भले ही कोई कुछ भी कर ले. व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु स्वयं उसका मन है जो स्थिर नहीं रहता.

आलसी व्यक्ति का मन चंचल नहीं होता. स्वभाव भी परोपकारी बनता जाता है. वह समझ जाता है कि यदि सभी कार्य वह स्वयं कर लेगा तो बाकी लोग क्या करेंगे. इस भावना के वशीभूत होकर वह त्याग कर अन्य लोगों को कार्य करने के अवसर प्रदान करता है.

आलस में निहित इन संसार के प्रति कल्याणकारी भावनाओं को समझ कर उसके प्रति प्रेम उत्पन्न करें. उसे गले से लगाएं अन्यथा उचित संरक्षण और देखभाल के अभाव में यह कला इस धरती से विलुप्त हो जाएगी. अभी भी कुछ कतिपय लोग इस कला को पूरे मनोयोग से धारण कर उसका निर्वहन कर इसे समृद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं.

इस कला को मिटाने की कोशिश आदिकाल से की जा रही है किन्तु उन साहसी योद्धाओं के कारण आलस आज भी अस्तित्व को बनाये हुए है. किन्तु इसका अस्तित्व अभी भी संकट में है, हम सभी को सम्मलित रूप से इस कला का प्रचार एवं प्रसार करना होगा ताकि सभी इसका लाभ लेकर अपने जीवन को शान्तिमय और आसान बना सकें. वरना कहीं ऐसा न हो कि दुनिया मेहनती लोगों से भर जाए और आलसी विलुप्त प्रजाति घोषित हो जाए !

लघुकथाएं

सास-बहू

बसंत राघव

रोजाना की तरह रीमा ने अपनी सास को फोन लगाया, हालचाल जाना. बातचीत के दौरान अपनी सासु माँ से उसने पड़ोसवाली चाची की तबीयत के बारे में भी पूछ लिया. इतना सुनते ही उसकी सासू माँ ने तथाकथित पड़ोसिन चाची की बहू की तारीफों के पुल बाँधने शुरू कर दिये. कितनी अच्छी बहू है उसकी, बर्थ डे हो या सास- ससुर की एनिवर्सरी . केक काटना, पार्टी देना वह कभी नहीं भूलती, शहर के विधायक तक को बुलाना हो, वह कभी पीछे नहीं हटती,खर्च की परवाह किए बगैर ब्यूटी पार्लर वाली को घर में ही बुलाकर, अपने साथ अपनी सास का भी आइब्रो,फेशियल, हेयर कटिंग से लेकर बॉडी मसाज तक करवाती है,उसकी बहू. तभी तो उसकी सास बहत्तर की होकर भी पचास की लगती है. अपनी सास की फीलिंग्स को वह बखूबी समझती है, समय - समय पर अपनी सास को सरप्राइज देकर वह हमेशा ख़ुश रखती है. उसकी सास ने व्यंग्य के लहजे में कहा %बड़े भाग्य से मिलती है,उसकी जैसी बहू%. रीमा ने अपनी सास की हां में हां मिलाते हुए जवाब दिया. बिल्कुलसही बात है बड़े भाग्य से मिलती है उनकी जैसी बहू और बहू को हूबहू माँ जैसी सास. इतना सुनते ही उसकी सास ने फोन काट दिया.

प्यार का प्रतिदान

निकिता जैन

बड़े जतन और सम्हाल के साथ बड़ा किया गया मोगरे का पौधा इस वर्ष जेठ की रिकॉर्ड ब्रेक दाहक गर्मी की तपन को सह नहीं पाया . उन्हीं दिनों दस -बारह दिन के लिए बाहर जाना हुआ , सभी पौधों को शेड में रखकर ,तीखी धूप से बचाव कर और पानी की व्यवस्था कर ही निकली .

वापस आते ही अगली सुबह सबसे पहले पौधों का मुआयना किया......अंतस में कुछ दरक गया ----सब्र , इंतजार और परवाह का पाठ सिखाने वाला मोगरे का यह पौधा जिसे फलता-फूलता छोड़ कर गई थी, उसकी जगह वहां थी सूखी और मृत शाखें और अनगिनत पुरानी यादें......

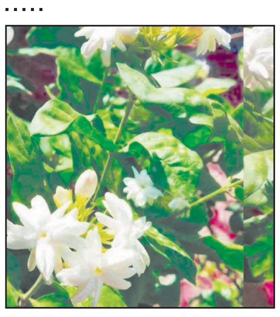

माली बाबा ने ? भी कह दिया था कि ,यह पौधा मर ? चुका है इसे फेंक देते हैं ; पर न जाने क्यों सूखी पातों ,मृतप्राय शाखों और कंकाल से दिखने वाले उस पौधे को उखाड़ कर फेंकने का मन नहीं किया ? ,न जाने किस आस ,विश्वास और उम्मीद की डोर बंधी थी कि ,उसे छांह में रखकर पहले की तरह ही उसकी देखभाल करती रही .

जीवन और अनुराग का जाने कौन-सा तार शेष बचा था , मेह की पहली बूंदों में भीगते ही तीन - चार दिन पहले मोगरे के उसी पौधे में एक छोटा सा हरा अंकुर दिखाई दिया और अगले तीन चार दिनों में ही छोटे-छोटे ? कई नये अंकुर दिखाई देने लगे .इस मौसम में चाहे फूल आएं न आएं हरी-हरी ,कोमल ,चिकनी ,चमकीली पत्तियों से तो वह पुन- लक - दक हो ही जाएगा ..... नेह के अंकुर बंजर और शुष्क भूमि में चाहे कितनी ही गहराई में दबे रहें , नमी पाकर अंखुआ ही जाते ? हैं ...यही प्यार है, और यही प्यार का प्रतिदान है..

पुस्तक चर्चा

इस बार जब लौटो तो उम्मीद की तरह लौटना तुम

(वरिष्ठ लेखक पंकज सुबीर के ताज़ा कविता संग्रह पर पाठकीय टिप्पणी)

मनीष वैद्य

जब दुनिया में ताप बढ़ जाता है, तो हम धरती से नमी लेते हैं. धरती के ताप को हरने के लिए बारिश आती है लेकिन जब हमारे भीतर ताप बढ़ जाता है. रिश्तों की नमी का कोई हरहराता बरगद अपनी जड़ों सहित हमसे अनायास दूर हो जाता है तो संवेदना की नमी हमें कविता के नज़दीक ले जाती है. अनूठे कथाकार पंकज सुबीर जब अपने पिता के चले जाने से ख़ालीपन और अवसाद में चुप्पी साधे मौन होने लगते हैं तो उनके भीतर का संवेदनशील मन अचानक कविता की भाव- भूमि गढ़ता है. खुद पंकज कहते हैं-एक दिन पहले ही पिता की अस्थियों को नर्मदा में विसर्जित करके आया था. मेरे सामने काग़ज़ और क़लम रखे हुए थे. मैंने कलम को उठाया और यूँ ही लिखना शुरू किया, जो लिखा जा रहा था वह एक कविता जैसा था-'पिता, तीन दिन बीत गये' अगले दिन जब फिर बैठा तो फिर एक कविता लिखी ...बस उसके बाद सिलसिला चलता रहा.. दिनों नहीं बल्कि अगले कुछ महीनों तक. प्रारम्भ में कविताएँ पिता पर लिखी गयीं... फिर धीरे-धीरे और विषय जुड़ते चले गये. इस प्रकार इन कविताओं का जन्म हुआ.

मेरे लिए पंकज सुबीर की कहानियाँ पढ़ना शुरू से ही प्रिय रहा. एक अनकहे क़िस्म का जुड़ाव रहा. वे अपने आसपास के किरदारों को इतनी सुगढ़ता से खड़ा करते हैं और उनमें संवेदना की नमी ऐसी होती है कि पढ़े जाने के बाद भी कई महीनों-सालों तक वे भीतर रची-बसी रह जाती हैं. ऐसे में उनकी कविताओं का यह ताज़ा संग्रह 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' मिलते ही पढ़ गया. तो पाया कि गद्य लिखने में जो छूट गया है, वह मुसलसल यहाँ चला आया है. कविताओं की शक्ल में, उसी ताप, तेवर, तरतीब. इनमें संवेदनाओं की वही घनेरी छाँव है, जो इस छीजते हुए वक़्त में हमें दो घड़ी ही सही सुकून और नेह देती है और एक ख़ास तरह की ताक़त भी. जो बताती हैं कि कोई भी अँधेरा कभी इतना घना नहीं होता कि उनमें 'उम्मीद की तरह लौटने' की प्रार्थनाएँ अनसुनी रह जाएँ.

इस संग्रह की कुछ कविताओं में पिता के जाने के बाद का ख़ालीपन है, उस बरगद की छाया के अनायास छीन जाने की मनस्थिति है, जो मुझ जैसे पितृविहीन हर पाठक से भीतर गहरे तक जुड़ती है. इनमें सुकोमल प्रेम-कविताएँ भी हैं, जो प्रकारांतर से दुनियादारी के खिलाफ़ प्रेम को मज़बूती से विकल्प की तरह रखती है. प्रतिरोध की कविताएँ हैं और प्रकृति के प्रेम में रची गई कविताएँ भी हैं, जो बड़े सवालों से मुठभेड़ करती सी लगती हैं. दरअसल जीवन को सुंदर बनाने में मानव सभ्यता और संस्कृति के साथ उसकी बहुआयामी चेतना का विस्तार ज़रूरी है. संवेदना ही उसे समाज और प्रकृति से जोडती है. कविता हमें संवेदना, प्रेम, सदभाव, सहिष्णुता, अहिंसा, समर्पण और परोपकार जैसे प्रतिमानों के ज़रिए चेतना संपन्न बनाकर एक समरस समाज के लिए प्रयत्नशील रहती है.

कवि प्रेम को लिखता-रचता नहीं, उसे जीता भी है. तभी तो किशोरवय के प्रेम की आवाज़ें तक वह जीवनभर भूल नहीं पाता. कविता 'तुम' में बरसों पुरानी वे ही महीन आवाज़ें पाठक के मन में भी गूँजती हैं. अपने लेखक मित्र यतीन्द्र मिश्र के लिए ये पंक्तियाँ कितनी सटीक हैं-यतीन्द्र तुम अभी भी बच्चे ही हो/ और बने रहना बच्चे ही,/ बड़े मत होना,/ बहुत गुणी, बहुत ज्ञानी व्यक्ति/ बहुत अकेला होता है. इसी तरह शहरयार के लिए-बेटा होता तो/ शायद तुम्हारे जैसा ही होता,/ इसी तरह रहता हमेशा/ मुझसे असहमत,/ बात-बात पर/ इसी तरह परवाह करता मेरी. उन स्नेह बन्धनों को पुख्ता करती हैं, जो कवि ने अपने निजी जीवन में बाँधे हैं.

उम्मीद की तरह लौटना तुम
कविता संग्रह)
पंकज सुबीर
मूल्य-300 रुपये
शिवना प्रकाशन, सीहोर (मप्र)

कविता

चाहे मैं जितना लिखूं

प्रेम का सागर लिखूं
गोप का ग्वाल लिखूं
या चेतना का चिंतन लिखूं
प्रीति की गागर लिखूं
या आत्मा का मंथन लिखूं
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

ज्ञानियों का गुंथन लिखूं
या गाय का ग्वाला लिखूं
कंस के लिए विष लिखूं
या भक्तों का अमृत प्याला लिखूं
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

पृथ्वी का मानव लिखूं
या निर्लिप्त योगेश्वर लिखूं
चेतना चिंतक लिखूं
या संतृप्त देवेश्वर लिखूं
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

जेल में जन्मा लिखूं
या गोकुल का पलना लिखूं
देवकी की गोदी लिखूं
या यशोदा का ललना लिखूं
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

गोपियों का प्रिय लिखूं
या राधा का प्रियतम लिखूं
रुक्मणि का श्री लिखूं
या सत्यभामा का श्रीतम लिखूं
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

देवकी का नंदन लिखूं
या यशोदा का लाल लिखूं
वासुदेव का तनय लिखूं
या नंद का गोपाल लिखूं
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

नदियों-सा बहता लिखूं
या सागर-सा गहरा लिखूं
झरनों-सा झरता लिखूं
या प्रकृति का चेहरा लिखूं
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

आत्मतत्व चिंतन लिखूं
या प्राणेश्वर परमात्मा लिखूं
स्थिर चित्त योगी लिखूं
या यताति सर्वात्मा लिखूं
रहोगे तुम फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

कृष्ण आप पर क्या लिखूं
कितना लिखूं
रहोगे आप फिर भी अपरिभाषित,
चाहे मै जितना लिखूं !!

✍ राकेश चौहान

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी